Indian Journal of Social Sciences and Literature Studies
Vol. 8, Issue 2, April 2022
ISSN 2349-5634 (Print) ISSN 2455-0973 (online)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य और कबीर

प्रा. सोमनाथ पं. वांजरवाडे
हिंदी विभाग,
विवेकानंद महाविद्यालय, औरंगाबाद

साहित्य वहीं महान और कालजयी होता है जो मानवता के प्रति अपने दायित्वों का बखूबी निर्वहन करता हैं। और जो मानवीय सरोकारों की उपज हो और मानव मूल्यों को प्रतिष्ठापित करता है। इसका सबसे प्रामाणिक और महत्वपूर्ण उदाहरण यदि कोई है तो वह है हिंदी का भक्ति साहित्य। इस बात की पुष्टी हिंदी साहित्य के महान इतिहासकार जार्ज ग्रियर्सन ने यह कहकर कि, ``भक्तिकाल हिंदी का स्वर्णयुग है।'' वैसे देखा जाए तो साहित्य अपने अपने समय की उपज होता है। मध्ययुगीन समय सामंतवादी और रुढ़िवादी था उस सामंतीय और रुढ़िवादी परिवेश में उपजी मानवतावादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति जिसे भक्तिकाव्य कहा जाता है।

मध्यकाल विशेष रूप से पूर्व मध्यकाल बहुत ही उथल-पुथल का समय था। उसमें संस्कृति, धर्म और विचार की तेज धाराएँ परस्पर टकरा रही थी। कर्मकाण्ड, सामाजिक विषमता, अंधविश्वास जैसे भँवरजाल में साधारण जनता फँसी हुई थी। इसी परिस्थिति पर भाष्य करते हुए कविता के माध्यम कहते हैं -

``चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय।।''[1]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य भी उससे कुछ अलग नजर नहीं आता है। अंतर केवल उतना ही है उस समय अशिक्षित, अज्ञानी लोगों की मात्रा अधिक थीं आज शिक्षित और ज्ञानी लोगों की मात्रा अधिक है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय कहा कहना बहुत महत्वपूर्ण है वें कहते हैं - ``आज के भारतीय समाज में उग्र साम्प्रदायिकता की आँधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार-प्रसार हो रहा है। जातिभेद खूँखार जाति युद्ध बन रहा है। तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं और संकीर्णताओं का बोलबाला है। स्थिति इतनी भीषण हो गई है कि, कबीर की साखियाँ जलायी जा रही हैं। यह सब देखकर मन में कई सवाल उठते हैं। क्या हम उसी समाज में हैं जिसमें कबीर पैदा हुए थे? क्या हम भारतीय समाज के उत्तर कबीर युग में जी रहे हैं? ऐसे समय में कबीर को याद करना स्वाभाविक है और जरुरी भी।''[2]

आज के युग / दौर को भलेही जो चाहे नाम दे - विज्ञान का युग। लेकिन विज्ञान कितना भी विकसित और समृद्ध बने वह विकास और समृद्धि तब शून्य हो जाती है जब मानव समाज आपस में जाति, धर्म, संप्रदाय के नाम पर विभाजित होता है और मनुष्यत्व को नकारता है।

आज 21वी सदीं में विज्ञान के माध्यम से इन्सान दुसरे गृह तक तो पहुँच गया है लेकिन जमीन पर (पृथ्वी) पर अपने आसपास के इन्सान तक नहीं पहुच रहा हैं। ऐसे में अनायास ही दीपक मिश्रा/शर्मा की कविता की यह पंक्तिया याद आती है जिसमें वें कहते हैं -

``फासलों में आ गई कितनी कमी
अब चाँद के नजदीक है आदमी
लेकिन बड़ी देर से
सोच रहा हूँ मैं
आदमी से क्यों दूर है आदमी।''[3]

आज का समय बड़ा कठीन है। ऐसे कठीन समय में मनुष्य की मनुष्यता खतरे में है। हिंदू या मूसलमान होकर अपनी चेतना और संवेदना को धर्म के हाथों गिरवी रखा जा रहा है। मनुष्य की स्वतंत्रता और मनुष्यता खतरे में है। ऐसे में सबसे पहले स्मरण होता है भक्तिसाहित्य का जिसमें सार्वभौमिक मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति कई रूपों में हुई है। मानव प्रेम के रूप में, लोकधर्म के रूप में, मानवकल्याण के रूप में, सामाजिक विषमता और धार्मिक आडम्बरों के खंडन के रूप में, अखंड प्राकृतिक सत्ता के प्रति गहरे लगाव के रूप में। आश्चर्य की बात तो यह है कि, 'कहते है कि शिक्षा मनुष्य को ज्ञानी बनाती है।' भारत में साक्षरता का प्रमाण लगभग 75 फिसदी के आसपास है। ऐसे शिक्षित समाज में भी सामाजिक विषमता, बाह्यांडम्बर, अंधविश्वास, जाति-पाति का ही बोलबाला है। इन स्थितियों में अनायास ही भक्ति साहित्य प्रासंगिक ही नहीं समय की सबसे बड़ी जरुरत बन जाता है।

भक्ति साहित्य के संत कवि चाहे किसी भी भाषा के क्यों न हो जैसे कर्नाटक के अलम्मा हो, गुजराती के नरसी मेहता हो, असम के शंकरदेव हो, मराठी के नामदेव हो, ज्ञानेश्वर हो, तुकाराम हो या हिंदी के कबीर, जायसी, नानक, तुलसी, दादू, मलूकदास हो या सूरदास हो इन्होंने मानवी मूल्यों को स्थापित किया जो सार्वभौमिक और सार्वकालिक हैं। आज के जटील समय में जरुरत है मनुष्य की मनुष्यता में आस्था निर्माण करने की। वह महत कार्य किया कबीर ने। भारतीय समाज में मनुष्य की पहले से ही बनी-बनायी पहचान है। आज के समय समाज में मनुष्य की पहचान के कई आधार है जेसे धर्म के आधार पर हिंदू, मुसलमान, शीख इसाई, बौद्ध आदि। और दूसरा जाति का प्राचीन समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र था वह आज भी है लेकिन लिबास बदलकर है जैसे ब्राह्मण, राजपूत, मराठा, महार, चमार, मांग, भंगी, मारवाडी। ऐसे समय कबीर के विचारों की आवश्यकता है जो मनुष्य की पहचान न किसी धर्म न किसी जाति के आधार पर मानते है। उन्हें केवल मनुष्य के रूप में उसी पहचान रखते हुए कहते हैं -

``हिंदू कहों तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्त्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं।।''[4]

साथ ही अन्य जगह यह कहते हैं -

``हम बासी उस देस के है
जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।''[5]

इस तरह से कबीर ने मनुष्य को पहले से प्रचलित धर्म, जाति और कुल के ऊँच-नीच के भेदभाव से मुक्त मनुष्य के रूप में देखने की दृष्टि विकसित की और उसी मलगामी दुष्टि से हिंदू और इस्लाम दोनों धर्मों, उनके आधार ग्रंथों से निकली सामाजिक व्यवस्थाओं और उन व्यवस्थाओं की रुढ़ियों की आलोचना की, क्योंकि इन सबसे मानव समाज में तरह तरह के भेद पैदा होते है। कबीर ही एक ऐसा कवि है जिसने निर्भीक होकर धार्मिक व्यवस्था की रुढ़ियों को सवालों के कटघरें में खड़ा कर सवाल करते हुए उसके अंतर्विरोधों को उजागर करते हैं -

``जो खोदाय मसजीद बसतु हैं, और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी, बाहर करै को हेरा।''[6]

भारत में 1993 की वह भयंकर घटना जहाँ धर्म के नाम पर कत्लेआम हुआ और इन्सानियत शर्मसार हुई। जिसकी आग जस-की-तस बरकरार है। ऐसे समय में कबीर ही वह कवि है जो समाज मके विकास के लिए हृदय के धर्म अर्थात मानवीय भावों को लोकधर्म बनाने की वकालत करते हैं इसलिए वे एक ओर ईष्र्या, क्रूरता, कामुकता, कपट, अहंकार की आलोचना करते हैं, तो दूसरी ओर प्रेम, करुणा, दया, उदारता, अहिंसा और समता का विकास चाहते हैं।

कबीर मनुष्य की स्वतंत्रता के कवि हैं। वे चाहते है कि मनुष्य अपनी आस्था, विश्वास और विश्वास के अनुसार जिये या भक्ति करें। उन्होंने मानव की स्वतंत्रता को सीमित करनेवाली हर बात का विरोध किया है चाहें वह सामाजिक हो या धार्मिक हो। उन्होंने कहां है कि, गौतम बुद्ध की तरह अपना दीपक स्वयं बनों। कबीर तत्कालीन समय में समाज में प्रचलित सभी अंधविश्वासों का खण्डन करते हैं। जो मनुष्य के विवेक और आत्मविश्वास का नाश करते है। उस समय यह अंधविश्वास प्रचलित था, या कह सकते है आज भी है कि जो काशी में प्राण त्यागता है या जिसकी मृत्यु होती है उसे मोक्ष प्राप्त होता, और जो मगहर में मरता है उसे नरक नसीब होता है और अगले जनम में गधा होता है। इसका मतलब था कि एक तो भक्ति का निरादार और दूसरा आत्मविश्वास का अंत। कबीर ने इन सबका स्पष्ट खण्डन किया है :

``लोकामति को भोरा रे,
जो कासी तन तजै कबीरा, तो रामहिं कौन निहोरा रे।''[7]

`अनभै साँचा' के आधार पर कबीर ने परंपरागत मानदण्डों को तिलांजलि देते हुए उन नए मानदंडों की स्थापना की जिसमें व्यक्ति बजाए उनकी स्वयं की अस्मिता और व्यक्तित्व को सर्वोच्च मूल्य माना है। कबीर ने व्यक्ति की गरिमा को महत्व दिया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार `अनभै साँचा' का अर्थ है। अनुभव का सत्य और अनभय सत्य भी। असल में अनुभव से पाया हुआ सत्य होता है, किसी से मिला हुआ नहीं होता है। कबीर को जो कुछ ज्ञान मिला था वह अपने मानव जीवन के अनुभव से मिला था, किसी ग्रंथवेद या कुरान से नहीं। इसीलिए वें उसे `अनभैं साँचा' कहते हैं। उसे अभिव्यक्त करते हुए कबीर ने कहाँ हैं :

``मेरा तेरा मनुवा कैसे एक होय रे,
मैं कहता हूँ आँखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारि,
तू राखा उरझोय रे।''[8]

कबीर हमारी संवेदनाओं को मानवीयता से जोड़ते है। मनुष्यता की नई परिभाषा करते हैं तथा नया धर्म रचते हैं। यह नया धर्म ही लोकधर्म है और इसी लोकधर्म के प्रति कबीर और उनका समूचा काव्य समर्पित है। कबीर ने धर्म को उंतुंग शिखर से उतारकर ठोस जमीन पर लोकजीवन से जोड़कर उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार एक नए मानव धर्म की प्रतिष्ठा की वहीं लोकधर्म जो विश्वधर्म में परिणत हो चुका है। जो आज के कठीन दौर में जहाँ मानवता कराह रही है, मर रही उसके लिए कबीर का लोकधर्म संजीवनी का काम करेंगा। कबीर के बारें में पालसिंह तोमर लिखते हैं, ``वर्तमान परिस्थितियों में जब हर कहीं झूठ फरेब का और बिल्लों नारों का ही बाजार गर्म है, देश तबाही के अंधकूप में आमूल धंसा जा रहा है, समाज के कर्णधार ही देश को चकनाचूर कर डालने पर तुले हैं, यदि हमें सही मार्ग कोई दिखा सकता है तो वह है - कबीर। कबीर मार्ग पर चलकर ही हम कल्याणकारी राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैंश् पूरे समाज को दिग्भ्रमित करनेवाले नेतृत्व को बेनकाब करने के लिए हमें वैसे ही वड्का का प्रहार करना होगा, जैसे कबीर ने समकालीन मठाधीशों पर किया था।''[9]

आज जहाँ हिंसा कट्टर धर्माधंता, धार्मिक असहिष्णुता जाँति-पाँति, उँच-नीच का बोलबाला है। कबीर बड़े प्रासंगिक लगते है जिन्होंने धर्म अधर्म की नई परिभाषा गढ़ी। राजदरबार मंदिर-मस्जिद के दायरे को तोड़कर जीवन ऐसी लोकधारा प्रवाहित करती है जिसकी मूल स्त्रोत-लोकजीवन ही है। कबीर ने समाज में व्याप्त जाँति-पाँति, छुआँ-छूत, उँच-नीच के भेदभाव का विरोध किया और मानवता की प्रतिष्ठा की। इसके साथ ही समाज में व्याप्त बाह्याडम्बर, पाखंड, कर्मकाण्ड आदि का पूर्णतः विरोध किया है। कबीर की विचारधारा लोकहितवादी रही है जिसमें वे सार्वभौमिक मूल्यों को तरजीह देते हैं।

कबीर एक महान संत और समाजसुधारक ही नहीं, अद्वितीय कवि भी हैं। जिन्होंने अपने समय के सच को देखा उसकी, भावी संभावनाओं को भी और उसी देखे हुए की कविता लिखी है। इसलिए कबीर एक ऐसे कवि है जिसे दृष्टा कहा जा सकता है। इसलिए आज के कठीन और भयावह दौर में भारतीय समाज को कबीर का लोकधर्म ही बचा सकता है जिसकी आधार है प्रेम। वहीं मनुष्य ही मनुष्यता पोषक है और स्वाधीनता का रक्षक है।

अंततोगत्वा यह कह सकते है कि, कबीर की कविता मानवतावादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है जो मानवीय सरोकार से उपजी है और सार्वभौमिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। जिसमें मानव प्रेम, लोकधर्म, मानव कल्याण, सामाजिक विषमता और धार्मिक आडम्बरों का खंडण और अखंड प्राकृतिक सत्ता के प्रति गहरा लगाव

देखने को मिलता है। इसबारे में मैनेजर पाण्डेय का कथन ध्यातव्य है - ``कबीर केवल अपने युग के चिंता के कवि नहीं हैं, भारत के अतीत की तेजस्वी ज्ञानधारा और भविष्य की संभावनाओं के भी कवि है।''[10] यहाँ इसी कामना के साथ आमीन....

``हम बासी उस देश के है
जहाँ जाति बरन कुल नाहिं।''[11]

संदर्भ सूची :

1. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
2. मैनेजर पाण्डेय, हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. क्र. 11
3. दीपक मिश्र, हिंदी कवि कबीर
4. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
5. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
6. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
7. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
8. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास
9. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता, पृ. क्र. 213
10. मैनेजर पाण्डेय, हिंदी कविता का अतीत और वर्तमान, पृ. क्र. 13
11. कबीर ग्रंथावली, श्यामसुंदर दास